

हिंदी साहित्य में नारी चेतना और सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन

गरिमा श्रीवास्तव

शोधार्थी, हिंदी विभाग, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (JNU), नई दिल्ली, भारत

सार

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, समाज को बदलने वाली शक्ति भी है। हिंदी साहित्य में नारी चेतना का विकास इस तथ्य का सशक्त प्रमाण है कि रचना और सामाजिक परिवर्तन एक-दूसरे को निरंतर प्रभावित करते रहे हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में हिंदी साहित्य में नारी चेतना के उद्भव, विकास और स्वरूप का अध्ययन किया गया है तथा यह जाँचने का प्रयास किया गया है कि इस चेतना ने भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति, अधिकारों और अस्मिता के प्रश्नों को किस प्रकार प्रभावित किया। अध्ययन द्वितीयक स्रोतों, अर्थात् प्रमुख रचनाओं, आलोचनात्मक ग्रंथों और ऐतिहासिक-सामाजिक अध्ययनों पर आधारित है। शोध-पत्र में नारी चेतना की अवधारणा, प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य में स्त्री की छवि, नवजागरण और स्वतंत्रता-आंदोलन के दौर में प्रेमचंद, जैनेंद्र, यशपाल और महादेवी वर्मा जैसे रचनाकारों का योगदान, स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती और उषा प्रियंवदा की रचनाएँ तथा 1990 के बाद के समकालीन स्त्री-विमर्श की प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। निष्कर्ष यह है कि हिंदी साहित्य में स्त्री क्रमशः सहानुभूति की पात्र से अपने अनुभव की स्वयं रचयिता बनी है, और इस यात्रा ने शिक्षा, कानूनी अधिकारों तथा पारिवारिक संबंधों से जुड़ी सामाजिक चर्चा को दिशा दी है। साथ ही बाज़ार, जाति और वर्ग से जुड़े प्रश्न आज भी स्त्री-विमर्श के सामने चुनौती हैं।

शब्द: नारी चेतना; स्त्री-विमर्श; हिंदी साहित्य; सामाजिक परिवर्तन; स्त्री अस्मिता; नवजागरण; समकालीन कथा साहित्य

प्रस्तावना

किसी भी समाज की प्रगति का सबसे विश्वसनीय मापदंड यह है कि उसमें स्त्री को कितना सम्मान, अवसर और स्वतंत्रता प्राप्त है। भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति सदैव एकरेखीय नहीं रही। एक ओर उसे शक्ति, विद्या और संपदा की देवी के रूप में पूजा गया, दूसरी ओर पितृसत्तात्मक संरचनाओं ने उसे परिवार की मर्यादा और त्याग की प्रतिमूर्ति बनाकर उसके व्यक्तित्व को सीमित कर दिया। साहित्य इन दोनों स्थितियों का साक्षी रहा है। सुमन राजे ने अपने ग्रंथ में यह प्रश्न उठाया है कि हिंदी साहित्य के जिस इतिहास को हम पढ़ते हैं, उसमें स्त्री-

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

रचनाकारों की उपस्थिति को वैसा स्थान क्यों नहीं मिला जिसकी वे अधिकारी थीं (सुमन राजे, 11)। यह प्रश्न इस बात का संकेत है कि साहित्य के इतिहास-लेखन में भी स्त्री का प्रश्न उतना ही महत्वपूर्ण है जितना समाज में।

नारी चेतना से आशय स्त्री के उस आत्मबोध से है जिसमें वह अपनी स्थिति, अपने अधिकारों और अपनी संभावनाओं को पहचानती है तथा पारंपरिक भूमिकाओं पर प्रश्न उठाती है। पश्चिम में सिमोन द बोउवार ने अपने चर्चित ग्रंथ में यह स्थापना दी कि स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है, अर्थात् स्त्रीत्व जैविक नियति से अधिक सामाजिक निर्मिति है (बोउवार, 267)। इस ग्रंथ का हिंदी में प्रभा खेतान द्वारा किया गया अनुवाद स्त्री उपेक्षिता नाम से प्रसिद्ध है, जिसने हिंदी पाठक-जगत में स्त्री-विमर्श की वैचारिक भूमि तैयार करने में सहायता की। भारत में यह चेतना केवल आयातित विचार नहीं थी, बल्कि समाज-सुधार आंदोलनों, शिक्षा के प्रसार, स्वतंत्रता-संग्राम में महिलाओं की भागीदारी और स्वयं स्त्रियों के लेखन से भी पोषित हुई। सामाजिक परिवर्तन और साहित्य का संबंध द्विमुखी है। एक ओर बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ साहित्य की विषय-वस्तु और दृष्टि को बदलती हैं, दूसरी ओर साहित्य पाठक की संवेदना को प्रभावित कर समाज में नए विचारों के लिए अनुकूल वातावरण बनाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब कहा था (शुक्ल, 1)। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य में नारी चित्रण के बदलते स्वरूप को समझना भारतीय समाज में आए परिवर्तनों को समझना भी है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी अंतःसंबंध का अध्ययन करता है।

साहित्य समीक्षा

नारी चेतना और स्त्री-विमर्श पर हिंदी तथा अंग्रेज़ी में पर्याप्त कार्य हुआ है। वैचारिक आधार के रूप में बोउवार की स्थापनाएँ मूल स्रोत मानी जाती हैं (बोउवार, 267)। भारतीय संदर्भ में पार्थ चटर्जी ने राष्ट्रवादी विमर्श में स्त्री-प्रश्न के समाधान की चर्चा करते हुए बताया कि स्त्री को घर के भीतर की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पहचान का वाहक मानकर उसे सार्वजनिक राजनीतिक बहस से अलग रखा गया (चटर्जी, 116)। जेराल्डीन फ़ोर्ब्स ने आधुनिक भारत में स्त्रियों के इतिहास को शिक्षा, समाज-सुधार और राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में प्रस्तुत किया (फ़ोर्ब्स, 1)। उमा चक्रवर्ती ने जाति और पितृसत्ता के अंतर्संबंध की ओर ध्यान दिलाया (चक्रवर्ती, 1)। हिंदी में सुमन राजे ने हिंदी साहित्य का आधा इतिहास लिखकर स्त्री-लेखन की उपेक्षा का प्रश्न उठाया (सुमन राजे, 11)। राजेंद्र यादव ने आदमी की निगाह में औरत में पुरुष-दृष्टि से रचित स्त्री-छवियों की आलोचना की (राजेंद्र यादव, 9)। प्रभा खेतान ने उपनिवेश में स्त्री में स्त्री-मुक्ति के विभिन्न स्वरूपों पर विमर्श किया (खेतान, उपनिवेश

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

में स्त्री, 7)। अनामिका ने स्त्रीत्व का मानचित्र में स्त्री-अनुभव की साहित्यिक अभिव्यक्ति को सांस्कृतिक संदर्भ में रखा (अनामिका, 15)। महादेवी वर्मा की श्रृंखला की कड़ियाँ को हिंदी में स्त्री-प्रश्न पर आरंभिक और गंभीर गद्य-विमर्श माना जाता है (महादेवी वर्मा, 5)। हजारीप्रसाद द्विवेदी की हिंदी साहित्य की भूमिका परंपरा के भीतर सामाजिक दृष्टि की खोज का उदाहरण है (द्विवेदी, 20)। दलित स्त्री-अनुभव के संदर्भ में कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा जाति और लिंग के दोहरे उत्पीड़न का दस्तावेज़ है (बैसंत्री, 1)। इन अध्ययनों के बावजूद यह स्थान रिक्त है कि प्राचीन से लेकर समकालीन साहित्य तक नारी चेतना के विकास को सामाजिक परिवर्तनों के साथ जोड़कर एकीकृत रूप में देखा जाए। यह शोध-पत्र इसी अंतराल को भरने का एक विनम्र प्रयास है।

शोध के उद्देश्य और शोध प्रश्न

इस अध्ययन के उद्देश्य हैं:

- (i) नारी चेतना की अवधारणा और स्वरूप को स्पष्ट करना
- (ii) हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों में स्त्री-चित्रण और नारी चेतना के विकास का विश्लेषण करना
- (iii) प्रमुख रचनाकारों और कृतियों के माध्यम से स्त्री-अनुभव की अभिव्यक्ति को समझना
- (iv) साहित्य और सामाजिक परिवर्तन, विशेषकर स्त्री-अधिकारों से जुड़े परिवर्तनों, के संबंध का मूल्यांकन करना

शोध पद्धति

यह अध्ययन वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक है तथा पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। प्राथमिक पाठ के रूप में प्रतिनिधि उपन्यासों और निबंध-संग्रहों का चयन किया गया है, जबकि आलोचनात्मक विवेचन के लिए हिंदी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों, स्त्री-विमर्श पर लिखी पुस्तकों और ऐतिहासिक-सामाजिक अध्ययनों का उपयोग किया गया है। विश्लेषण के लिए कालक्रमिक और विषयगत, दोनों पद्धतियाँ अपनाई गई हैं। कृतियों का चयन प्रतिनिधित्व के आधार पर किया गया है, इसलिए सभी रचनाकारों का समावेश संभव नहीं हो सका है। अध्ययन की सीमा यह है कि इसमें साक्षात्कार या सर्वेक्षण जैसे प्राथमिक आँकड़ों का प्रयोग नहीं किया गया है तथा काव्य-साहित्य की अपेक्षा कथा साहित्य को अधिक स्थान मिला है।

नारी चेतना: अवधारणा और स्वरूप

नारी चेतना, नारीवाद और स्त्री-विमर्श, ये तीनों शब्द परस्पर संबद्ध होते हुए भी समान नहीं हैं। नारी चेतना व्यापक आत्मबोध है, जो परंपरागत सामाजिक भूमिकाओं पर प्रश्न उठाने से लेकर स्वतंत्र व्यक्तित्व की माँग तक फैला हुआ है। नारीवाद एक वैचारिक आंदोलन है जो स्त्री-पुरुष समानता के लिए संगठित प्रयास करता है, जबकि स्त्री-विमर्श साहित्य और आलोचना में स्त्री-अनुभव को केंद्र में रखकर विश्लेषण करने की पद्धति है। राजेंद्र यादव ने यह रेखांकित किया कि पुरुष-रचित साहित्य में स्त्री को प्रायः देवी, भोग्या या त्याग की मूर्ति के साँचों में बाँध दिया गया (राजेंद्र यादव, 9)। इन साँचों को तोड़ना ही नारी चेतना का आरंभिक चरण है। नारी चेतना के कई आयाम पहचाने जा सकते हैं। पहला, आर्थिक आयाम, जिसमें शिक्षा, रोज़गार और संपत्ति पर अधिकार की माँग शामिल है। दूसरा, सामाजिक-पारिवारिक आयाम, जिसमें विवाह, दहेज, बाल-विवाह, विधवा-जीवन और घरेलू हिंसा जैसे प्रश्न आते हैं। तीसरा, दैहिक और भावनात्मक आयाम, जिसमें स्त्री अपनी देह, इच्छा और निर्णय की स्वतंत्रता की बात करती है। चौथा, राजनीतिक आयाम, जिसमें सार्वजनिक जीवन और निर्णय-प्रक्रिया में भागीदारी की माँग है। पाँचवाँ, पहचान का आयाम, जिसमें जाति, वर्ग, धर्म और क्षेत्र के आधार पर स्त्रियों के अलग-अलग अनुभवों को स्वीकार किया जाता है। चक्रवर्ती ने स्पष्ट किया है कि जाति और पितृसत्ता के बंधन परस्पर गुँथे हुए हैं, इसलिए स्त्री-प्रश्न को सभी स्त्रियों के एक-सा अनुभव के रूप में नहीं देखा जा सकता (चक्रवर्ती, 1)। यह समझ समकालीन हिंदी स्त्री-लेखन में विशेष रूप से दिखाई देती है।

प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य में स्त्री की छवि

प्राचीन भारतीय परंपरा में स्त्री की स्थिति के संबंध में परस्पर विरोधी चित्र मिलते हैं। वैदिक और उपनिषद् काल में गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों के उल्लेख मिलते हैं, जिन्होंने शास्त्रार्थ में भाग लिया। परंतु परवर्ती काल में स्मृतियों और सामाजिक रूढ़ियों ने स्त्री की स्वतंत्रता को क्रमशः सीमित किया। द्विवेदी ने यह दिखाया कि साहित्य में स्त्री का चित्रण युग की सामाजिक मान्यताओं से निर्धारित होता रहा है (द्विवेदी, 20)। आदिकाल और रीतिकाल के साहित्य में स्त्री प्रायः सौंदर्य और शृंगार के आलंबन के रूप में चित्रित हुई, यद्यपि इस काल में भी स्त्री-रचनाकारों की उपस्थिति के संकेत मिलते हैं, जिनकी ओर सुमन राजे ने ध्यान दिलाया है (सुमन राजे, 45)।

भक्तिकाल में स्त्री-स्वर की सबसे उल्लेखनीय अभिव्यक्ति मीराबाई में मिलती है। मीरा ने राजपरिवार की मर्यादाओं और सामाजिक अपवादों की परवाह न करते हुए भक्ति का अपना मार्ग चुना। उनके पदों में सामंती

पारिवारिक नियंत्रण के विरुद्ध असहमति का स्वर साफ़ पहचाना जा सकता है। शुक्ल ने भक्ति आंदोलन को लोकजीवन से जोड़ा है (शुक्ल, 42), और इस आंदोलन में स्त्रियों और निम्न समझी जाने वाली जातियों को आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का अवसर मिला, जो उस समय के सामाजिक ढाँचे में महत्वपूर्ण था। फिर भी मध्यकालीन साहित्य में नारी-चेतना व्यवस्थित सामाजिक विमर्श के रूप में नहीं, बल्कि व्यक्तिगत विद्रोह और आध्यात्मिक आत्मस्वीकृति के रूप में प्रकट हुई। आधुनिक अर्थों में स्त्री-अधिकारों की चर्चा के लिए औपनिवेशिक आधुनिकता और नवजागरण की प्रतीक्षा करनी पड़ी।

नवजागरण और स्वतंत्रता-आंदोलन के दौर में नारी चेतना

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय समाज में सुधार आंदोलनों ने स्त्री-प्रश्न को सार्वजनिक बहस के केंद्र में ला दिया। सती-प्रथा पर 1829 में प्रतिबंध, ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयासों से विधवा-पुनर्विवाह कानून 1856, सावित्रीबाई फुले और ज्योतिबा फुले द्वारा 1848 में पुणे में कन्याओं के लिए विद्यालय की स्थापना जैसे कदम इस काल के परिवर्तन के प्रतीक हैं। फ़ोर्ब्स ने इन सुधारों को राष्ट्रीय आंदोलन और स्त्री-शिक्षा के संदर्भ में रखकर देखा है (फ़ोर्ब्स, 20)। फिर भी चटर्जी का तर्क है कि राष्ट्रवादी विमर्श ने स्त्री को घर की आंतरिक, आध्यात्मिक दुनिया की संरक्षिका मानकर बाहरी दुनिया के प्रश्नों से अलग रखा, जिससे सुधार के बावजूद स्त्री की स्वायत्तता सीमित रही (चटर्जी, 116)।

हिंदी क्षेत्र में स्त्री-शिक्षा और स्त्री-विषयक पत्रिकाओं ने भी चेतना के प्रसार में योगदान दिया। बीसवीं सदी के आरंभ में स्त्री दर्पण जैसी पत्रिकाओं और बाद में महादेवी वर्मा द्वारा संपादित चाँद जैसे मंचों पर स्त्रियों ने शिक्षा, विवाह और सामाजिक रूढ़ियों पर अपने विचार व्यक्त किए। इससे साहित्य में एक ऐसी पाठक-रचनाकार पीढ़ी तैयार हुई जिसने आगे स्त्री-प्रश्न को गंभीर साहित्यिक विषय बनाया।

प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य में स्त्री-प्रश्न को सामाजिक समस्या के रूप में केंद्र में लाने वाले प्रमुख रचनाकार हैं। सेवासदन में एक विवाहिता सुमन परिस्थितियों के दबाव में वेश्या-जीवन तक पहुँचती है। प्रेमचंद ने इस कथा में दहेज-प्रथा, मध्यवर्गीय पाखंड और स्त्री की आर्थिक निर्भरता को उसके पतन का कारण दिखाया (प्रेमचंद, सेवासदन, 28)। निर्मला में एक किशोरी का अधिक आयु के विधुर से विवाह और उससे उपजी त्रासदी अनमेल विवाह और दहेज के सामाजिक अभिशाप को उजागर करती है (प्रेमचंद, निर्मला, 15)। गोदान में धनिया का चरित्र ग्रामीण स्त्री की दृढ़ता, श्रम और स्वाभिमान का प्रतीक है, जबकि शिक्षित मालती आधुनिक स्त्री की

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

आत्मनिर्भरता और उसके अंतर्द्वंद्वों को सामने रखती है (प्रेमचंद, गोदान, 61)। रामविलास शर्मा के अनुसार प्रेमचंद ने स्त्री-पात्रों को केवल सहानुभूति के विषय के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संघर्ष की सहभागी के रूप में चित्रित किया, यद्यपि उनमें आदर्शवादी झुकाव भी दिखाई देता है (रामविलास शर्मा, 88)।

जैनेंद्र कुमार ने स्त्री के मनोजगत और उसकी आंतरिक पीड़ा को अपनी कथा का विषय बनाया। त्यागपत्र की मृणाल पारिवारिक और सामाजिक दबावों के बीच अपने निर्णयों का मूल्य चुकाती है, और उपन्यास पाठक के सामने समाज की नैतिकता पर प्रश्न छोड़ देता है (जैनेंद्र, 33)। यशपाल ने दिव्या में स्त्री की स्वतंत्रता और आत्मसम्मान के प्रश्न को ऐतिहासिक कथा-भूमि पर रखा और स्त्री के निर्णय के अधिकार को केंद्रीय बनाया (यशपाल, 57)। इन दोनों के यहाँ पारंपरिक नैतिकता पर प्रश्न उठाने का साहस दिखाई देता है।

महादेवी वर्मा ने छायावादी कवि के रूप में प्रसिद्ध होने के साथ-साथ गद्य में स्त्री-प्रश्न पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया। श्रृंखला की कड़ियाँ में उन्होंने भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति, शिक्षा, आर्थिक निर्भरता और विवाह-संस्था से जुड़े प्रश्नों पर विचारपूर्ण निबंध लिखे और स्त्री को केवल पुरुष की छाया के रूप में नहीं, स्वतंत्र मनुष्य के रूप में देखने का आग्रह किया (महादेवी वर्मा, 5)। इस रचना को हिंदी में स्त्री-विमर्श की एक आरंभिक कड़ी के रूप में पढ़ा जाता है, और इसी कारण अनामिका जैसी परवर्ती आलोचकों ने स्त्री-अनुभव की परंपरा को खोजते समय उनके गद्य का स्मरण किया है (अनामिका, 15)।

नारी चेतना की अभिव्यक्ति केवल कथा साहित्य तक सीमित नहीं रही; कविता में भी स्त्री-स्वर ने अपनी जगह बनाई। महादेवी वर्मा की कविता में, जो नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत जैसे संग्रहों में विस्तृत है, वेदना, एकांत और आत्मसंघर्ष की गहरी अनुभूति मिलती है। इस काव्य को प्रायः रहस्यवादी और भावनात्मक माना जाता है, परंतु उनके गद्य के साथ पढ़ने पर उसमें स्त्री की आत्म-अस्मिता की खोज का स्वर भी सुनाई देता है। श्रृंखला की कड़ियाँ में उन्होंने सामाजिक बंधनों की जो आलोचना की, वही चेतना उनकी कविता में भावनात्मक स्तर पर प्रकट होती है (महादेवी वर्मा, 5)। इस प्रकार महादेवी वर्मा हिंदी में ऐसी रचनाकार हैं जिनके यहाँ स्त्री-अनुभव कविता और गद्य, दोनों में एक-दूसरे की पूरक अभिव्यक्ति पाता है।

परवर्ती काल में स्त्री-कविता ने नए स्वर और नई भाषा अर्जित की। अनामिका जैसी रचनाकारों के लेखन में स्त्री के दैनंदिन अनुभव, घर-परिवार के श्रम और उसकी अदृश्य भूमिकाओं को संवेदनशील भाषा में उभारा गया है, और उनके आलोचनात्मक निबंध स्त्री-लेखन की परंपरा को सांस्कृतिक संदर्भ में रखकर देखते हैं

(अनामिका, 15)। सुमन राजे का यह आग्रह कि स्त्री-रचनाकारों की कविता को भी साहित्य के मुख्य इतिहास में उचित स्थान मिलना चाहिए, इसी परंपरा के पुनर्मूल्यांकन की माँग है (सुमन राजे, 11)।

गांधी के नेतृत्व में चले राष्ट्रीय आंदोलन ने बड़ी संख्या में स्त्रियों को घर की सीमाओं से निकलकर सार्वजनिक जीवन में सक्रिय किया। असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी ने यह धारणा तोड़ी कि राजनीति केवल पुरुषों का क्षेत्र है। फ़ोर्ब्स ने इस भागीदारी को आधुनिक भारतीय स्त्री-इतिहास का महत्वपूर्ण मोड़ माना है (फ़ोर्ब्स, 100)। हिंदी साहित्य में इस परिवर्तन की झलक स्पष्ट मिलती है। सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में वीरांगना की छवि और राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्री की उपस्थिति दिखाई देती है, और प्रेमचंद के कर्मभूमि जैसे उपन्यासों में स्त्रियाँ सत्याग्रह और सामाजिक सेवा के कार्यों में भाग लेती चित्रित हुई हैं। फिर भी यह भागीदारी अपने साथ अंतर्विरोध भी लाई। चटर्जी का तर्क है कि राष्ट्रवादी आंदोलन ने स्त्री को राष्ट्र की सांस्कृतिक पवित्रता का प्रतीक बनाकर उससे विशेष प्रकार के आचरण की अपेक्षा की, जिससे उसकी सार्वजनिक सक्रियता के बावजूद उसकी स्वायत्तता सीमित बनी रही (चटर्जी, 116)। साहित्य में यह तनाव जैनेंद्र और यशपाल जैसे रचनाकारों की स्त्री-पात्रों में देखा जा सकता है, जो एक ओर स्वतंत्र निर्णय की आकांक्षा रखती हैं और दूसरी ओर सामाजिक मर्यादा के भार से जूझती हैं (जैनेंद्र, 33; यशपाल, 57)।

स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में नारी चेतना

स्वातंत्र्य के बाद शिक्षा के प्रसार, नगरीकरण और स्त्री के घर से बाहर निकलकर नौकरी करने की प्रक्रिया ने नए सामाजिक अनुभव पैदा किए। इस परिवर्तन का प्रभाव कथा साहित्य पर स्पष्ट दिखाई देता है। नई कहानी के आलोचकों ने यह रेखांकित किया था कि कहानी अब सामाजिक-वैयक्तिक अनुभव के सूक्ष्म स्तरों की ओर मुड़ रही है, जिसमें स्त्री-पुरुष संबंधों का नया स्वरूप भी सम्मिलित है। इस दौर में महिला कथाकारों ने स्त्री-जीवन की अपनी जटिलताओं को स्वयं लिखना आरंभ किया।

मन्नू भंडारी का आपका बंटी तलाक के बाद बिखरते परिवार, माँ शकुन के द्वंद्व और बच्चे के मनोविज्ञान को एक साथ प्रस्तुत करता है। यहाँ स्त्री की आत्मनिर्भरता और उसके मातृत्व के बीच का तनाव सामने आता है (मन्नू भंडारी, 112)। कृष्णा सोबती की मित्रो मरजानी की मित्रो अपनी दैहिक इच्छाओं को निःसंकोच अभिव्यक्त करने वाली स्त्री है। उसकी भाषा और व्यवहार ने पारिवारिक संस्था में स्त्री की इच्छा के लिए जगह बनाने की चुनौती दी (कृष्णा सोबती, 40)। उषा प्रियंवदा की पचपन खंभे लाल दीवारों में अकेली कामकाजी स्त्री सुषमा

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

पारिवारिक दायित्वों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के बीच फँसी दिखाई देती है, जो मध्यवर्गीय कामकाजी स्त्री के अकेलेपन का संवेदनशील चित्र है (उषा प्रियंवदा, 70)।

इन रचनाओं की विशेषता यह है कि इनमें स्त्री-पात्र आदर्श या उपदेश के पात्र नहीं, बल्कि अपने अंतर्विरोधों के साथ जीवित मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। इस प्रवृत्ति ने हिंदी कथा साहित्य की संवेदना को बदल दिया। सुमन राजे इस बदलाव को स्त्री-रचनाशीलता की पहचान के निर्णायक चरण के रूप में देखती हैं (सुमन राजे, 210)। यह भी उल्लेखनीय है कि इसी काल में हिंदू विवाह अधिनियम 1955 और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 जैसे कानूनों ने विवाह, तलाक और संपत्ति से जुड़े स्त्री के अधिकारों में परिवर्तन किया, और साहित्य में उभरती स्त्री की आत्मनिर्भरता की चिंता इन सामाजिक-कानूनी परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में पढ़ी जा सकती है। प्रेमचंद-युग और स्वातंत्र्योत्तर काल की स्त्री-पात्रों की तुलना से परिवर्तन की दिशा स्पष्ट होती है। प्रेमचंद की सुमन और निर्मला मुख्यतः सामाजिक कुप्रथाओं की शिकार हैं और पाठक की सहानुभूति जगाती हैं (प्रेमचंद, सेवासदन, 28; प्रेमचंद, निर्मला, 15)। मन्नू भंडारी की शकुन, कृष्णा सोबती की मित्रो और उषा प्रियंवदा की सुषमा अपने निर्णयों, इच्छाओं और असफलताओं की स्वयं जिम्मेदार हैं। उनके जीवन के संघर्ष केवल बाहरी सामाजिक दबाव के नहीं, बल्कि आंतरिक द्वंद्व के भी हैं (मन्नू भंडारी, 112; कृष्णा सोबती, 40; उषा प्रियंवदा, 70)। इस प्रकार स्त्री-चित्रण पीढ़ी की छवि से आगे बढ़कर कर्ता और निर्णयकर्ता की छवि की ओर गया है। विषयवस्तु के स्तर पर भी परिवर्तन दर्शनीय है। प्रारंभिक रचनाओं में केंद्रीय प्रश्न विवाह, दहेज और विधवा-जीवन जैसे सामाजिक ढाँचे से जुड़े थे। स्वातंत्र्योत्तर रचनाओं में तलाक, मातृत्व और कैरियर के बीच तनाव, अकेलापन और दैहिक इच्छा जैसे प्रश्न उभरे। 1990 के बाद आर्थिक आत्मनिर्भरता, कार्यस्थल, श्रमिक संगठन और अस्मिता की राजनीति जैसे प्रश्न इसमें जुड़ गए। यह विकास यह भी दिखाता है कि जैसे-जैसे स्त्री की सामाजिक स्थिति बदलती गई, साहित्य के प्रश्न भी बदलते गए। सुमन राजे की इस स्थापना को कि स्त्री-लेखन अपने समय के अनुभव का सजीव दस्तावेज़ है, इसी संदर्भ में समझा जा सकता है (सुमन राजे, 210)।

समकालीन स्त्री-विमर्श: 1990 के बाद की प्रवृत्तियाँ

1990 के दशक के बाद हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श एक सुस्पष्ट और मुखर धारा के रूप में उभरा। इसके पीछे वैश्विक स्त्रीवादी चिंतन, भारत में महिला आंदोलनों, पंचायती राज में आरक्षण तथा हंस जैसी पत्रिकाओं में स्त्री-प्रश्न पर चली बहसों का प्रभाव था। राजेंद्र यादव ने पत्रिका के माध्यम से स्त्री-विमर्श को हिंदी की केंद्रीय

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

चर्चा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई (राजेंद्र यादव, 9)। इस दौर की रचनाओं में स्त्री केवल संघर्षशील नहीं, बल्कि अपने जीवन-निर्णयों की स्वामिनी के रूप में चित्रित होती है।

प्रभा खेतान की छिन्नमस्ता में प्रिया आर्थिक आत्मनिर्भरता के माध्यम से अपनी अस्मिता स्थापित करने वाली स्त्री है। उपन्यास स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता और उसके भावनात्मक संबंधों के जटिल रिश्ते पर विचार करता है (खेतान, छिन्नमस्ता, 54)। मैत्रेयी पुष्पा ने इदन्नमम जैसे उपन्यासों में बुंदेलखंड के ग्रामीण परिवेश में स्त्रियों के संघर्ष, श्रम और आत्मनिर्भरता की कहानी कही, जिससे शहरी मध्यवर्गीय स्त्री-विमर्श के दायरे का विस्तार ग्रामीण स्त्री तक हुआ (मैत्रेयी पुष्पा, 88)। चित्रा मुद्गल के आवाँ में मुंबई के कामकाजी वर्ग की स्त्रियों का जीवन, श्रम-संघर्ष और संगठित आंदोलन का परिप्रेक्ष्य सामने आता है, जो स्त्री-प्रश्न को वर्ग-प्रश्न से जोड़ता है (चित्रा मुद्गल, 120)। गीतांजलि श्री का रेत समाधि इस धारा का एक नया शिखर है। एक वृद्ध स्त्री के जीवन-पुनर्जागरण और उसकी सीमाओं के पार जाने की यात्रा के माध्यम से यह उपन्यास स्त्री-अस्तित्व, उम्र, परिवार और सीमा-रेखाओं के पारंपरिक अर्थों को चुनौती देता है (गीतांजलि श्री, 180)। इसके अंग्रेज़ी अनुवाद को 2022 में अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार मिलने से हिंदी स्त्री-लेखन की वैश्विक उपस्थिति भी रेखांकित हुई। दलित स्त्री-लेखन में कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा जाति और लिंग के दोहरे उत्पीड़न का साक्ष्य है (बैसंत्री, 1) और यह दिखाती है कि स्त्री-चेतना का विमर्श सवर्ण मध्यवर्गीय अनुभव तक सीमित नहीं किया जा सकता। समकालीन स्त्री-विमर्श की एक विशेषता श्रम और स्त्री के संबंध पर बढ़ता ध्यान है। चित्रा मुद्गल का आवाँ यह दिखाता है कि कामकाजी स्त्री का संघर्ष केवल पितृसत्ता से नहीं, बल्कि शोषक आर्थिक तंत्र से भी है, और इस कारण स्त्री-मुक्ति का प्रश्न वर्ग-मुक्ति के प्रश्न से अलग नहीं किया जा सकता (चित्रा मुद्गल, 120)। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में खेत, पानी और रोज़मर्रा के श्रम से जूझती ग्रामीण स्त्री की उपस्थिति इस विमर्श को लोक-अनुभव की ज़मीन देती है (मैत्रेयी पुष्पा, 88)। कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा इस विमर्श में जाति की परत जोड़ती है और बताती है कि दलित स्त्री का अनुभव एक साथ वर्ग, जाति और लिंग के उत्पीड़न से बनता है (बैसंत्री, 1)।

इन रचनाओं का साझा निष्कर्ष यह है कि स्त्री-अनुभव का कोई एक साँचा नहीं है। शिक्षित नगरवासी स्त्री, ग्रामीण श्रमिक स्त्री और दलित स्त्री के अनुभव एक-दूसरे से भिन्न हैं, इसलिए सही अर्थों में नारी चेतना बहुवचन है। यही कारण है कि प्रभा खेतान जैसी लेखिकाओं ने स्त्री-मुक्ति के अलग-अलग रूपों और उनकी सीमाओं पर विचार किया (खेतान, उपनिवेश में स्त्री, 7)।

नारी चेतना और सामाजिक परिवर्तन: परस्पर संबंध

साहित्य और समाज के बीच संबंध कार्य-कारण की एकरेखीय प्रक्रिया नहीं है। इसे तीन स्तरों पर देखा जा सकता है। पहले स्तर पर, सामाजिक परिवर्तन साहित्य की विषय-वस्तु निर्धारित करते हैं। सुधार आंदोलनों के समय सती, बाल-विवाह और विधवा-जीवन साहित्य के विषय बने, स्वतंत्रता के बाद शिक्षित कामकाजी स्त्री और टूटते वैवाहिक संबंध, और 1990 के बाद बाज़ार, विस्थापन और अस्मिता के प्रश्न। शुक्ल की साहित्य-दृष्टि इस पक्ष की पुष्टि करती है (शुक्ल, 1)। दूसरे स्तर पर, साहित्य संवेदना को आकार देता है। प्रेमचंद के उपन्यासों ने दहेज, अनमेल विवाह और स्त्री की आर्थिक निर्भरता की समस्याओं के प्रति पाठकों में सहानुभूति पैदा की (प्रेमचंद, निर्मला, 15)। मित्रो जैसी पात्र ने पारिवारिक संस्था में स्त्री की इच्छा की चर्चा को स्वीकार्य बनाने की भूमिका निभाई (कृष्णा सोबती, 40)। तीसरे स्तर पर, साहित्य सार्वजनिक बहस में भागीदार बनता है। आधुनिक भारत में स्त्री-अधिकारों से जुड़े कानूनी परिवर्तनों की शृंखला पर दृष्टि डालें तो ऐतिहासिक क्रम इस प्रकार दिखता है: बाल-विवाह निरोधक अधिनियम 1929, हिंदू विवाह तथा उत्तराधिकार संबंधी अधिनियम 1955-56, दहेज निषेध अधिनियम 1961, संविधान के तिहत्तरवें संशोधन से पंचायतों में महिला आरक्षण 1992, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के विरुद्ध विशाखा दिशा-निर्देश 1997, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005 और हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम 2005, जिसने पुत्रियों को पैतृक संपत्ति में समान अधिकार दिए। फ़ोर्ब्स और चटर्जी के ऐतिहासिक विश्लेषण इन परिवर्तनों की पृष्ठभूमि समझाते हैं (फ़ोर्ब्स, 100; चटर्जी, 116)। इन कानूनों के पीछे महिला आंदोलनों की प्रमुख भूमिका थी, परंतु साहित्यिक विमर्श ने भी इन प्रश्नों को सामाजिक मान्यता और भाषा प्रदान की।

यह भी ध्यान रखना होगा कि परिवर्तन असमान रहा है। कानूनी अधिकार प्राप्त होना और उनका व्यवहार में लागू होना दो अलग बातें हैं। प्रभा खेतान ने उपनिवेश में स्त्री में यह रेखांकित किया है कि आधुनिकता और बाज़ार के बावजूद स्त्री की मुक्ति के कई रूप नए बंधन भी रचते हैं (खेतान, उपनिवेश में स्त्री, 7)। इसलिए साहित्य का दायित्व केवल उपलब्धियों का उत्सव मनाना नहीं, बल्कि बदलते समाज में नए प्रश्नों को पहचानना भी है। स्त्री-चेतना के प्रसार में शिक्षा और पत्रकारिता की भूमिका निर्णायक रही है। स्त्री-शिक्षा के विस्तार से एक ऐसा पाठक-वर्ग तैयार हुआ जो स्त्री-प्रश्नों पर लिखी रचनाओं को समझने और उन पर बहस करने में सक्षम था। फ़ोर्ब्स के अनुसार आधुनिक भारत में स्त्री-शिक्षा केवल व्यक्तिगत उन्नति का साधन नहीं रही, बल्कि उसने

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन में प्रवेश का आधार भी दिया (फ़ोर्ब्स, 20)। पत्र-पत्रिकाओं ने इस प्रक्रिया को गति दी। स्त्री दर्पण और चाँद जैसी पत्रिकाओं ने स्त्रियों को लिखने और अपने अनुभव साझा करने का मंच दिया, तथा 1986 में पुनः आरंभ हुई हंस ने स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श को हिंदी की मुख्य साहित्यिक बहस बना दिया (राजेंद्र यादव, 9)। विश्वविद्यालयों में स्त्री-अध्ययन के केंद्रों की स्थापना और पाठ्यक्रमों में स्त्री-रचनाकारों के समावेश ने भी इस चेतना को संस्थागत आधार दिया। सुमन राजे का हिंदी साहित्य का आधा इतिहास इसी प्रक्रिया का एक उदाहरण है, जिसमें साहित्य के इतिहास को स्त्री-दृष्टि से दोबारा लिखने का प्रयास किया गया (सुमन राजे, 11)। इन संस्थागत प्रयासों के कारण स्त्री-लेखन अब हाशिए की चीज़ नहीं रहा, यद्यपि अपेक्षित समावेशन अभी भी पूरा नहीं हुआ है। यह भी सत्य है कि प्रत्येक पाठक-वर्ग तक यह विमर्श समान रूप से नहीं पहुँचा है, और ग्रामीण तथा वंचित समुदायों की स्त्रियों तक पहुँचने के लिए भाषा, माध्यम और प्रकाशन की संरचनाओं में परिवर्तन आवश्यक है।

चुनौतियाँ

हिंदी स्त्री-विमर्श के समक्ष कई चुनौतियाँ हैं। पहली चुनौती है विमर्श की सीमित सामाजिक आधारभूमि। चक्रवर्ती और बैसंत्री जैसी आवाज़ें यह दर्शाती हैं कि दलित, आदिवासी और ग्रामीण स्त्रियों के अनुभव प्रायः शहरी, सवर्ण, मध्यवर्गीय स्त्री-विमर्श से अलग होते हैं (चक्रवर्ती, 1; बैसंत्री, 1)। इसलिए स्त्री-विमर्श की बहुलता को स्वीकारना आवश्यक है। दूसरी चुनौती देह और स्वतंत्रता के प्रश्न को लेकर चली बहस है। इस विषय पर विरोधी मत हैं: कुछ आलोचक इसे स्त्री की आत्माविव्यक्ति की आवश्यक स्वतंत्रता मानते हैं, जबकि अन्य को आशंका है कि बाज़ार देह-मुक्ति के विमर्श को उपभोग की वस्तु में बदल सकता है। अनामिका जैसी आलोचक स्त्री-अनुभव को देह तक सीमित किए बिना उसके सांस्कृतिक और भावनात्मक विस्तार को देखने का आग्रह करती हैं (अनामिका, 15)। तीसरी चुनौती पुरुष-लेखन और स्त्री-लेखन के संबंध की है। प्रश्न उठता है कि क्या स्त्री-अनुभव को केवल स्त्री ही व्यक्त कर सकती है, या संवेदनशील पुरुष लेखक भी। प्रेमचंद और जैनेंद्र जैसे रचनाकारों का योगदान यह दर्शाता है कि संवेदनशील पुरुष दृष्टि भी स्त्री-प्रश्नों को स्थान दे सकती है, हालाँकि राजेंद्र यादव की आलोचना यह भी बताती है कि पुरुष-रचित स्त्री-छवियाँ प्रायः पूर्वग्रहों से मुक्त नहीं होतीं (राजेंद्र यादव, 9)। चौथी चुनौती बाज़ार और मीडिया की है, जो स्त्री-स्वतंत्रता को उपभोक्ता-स्वतंत्रता के रूप में प्रस्तुत

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

करते हैं। पाँचवीं चुनौती यह है कि स्त्री-लेखन को आज भी कई बार अलग खँचे में रखकर पढ़ा जाता है, जबकि सुमन राजे का आग्रह साहित्य के इतिहास को स्त्री-लेखन सहित पुनर्लिखे जाने का है (सुमन राजे, 11)।

निष्कर्ष

इस शोध-पत्र में हिंदी साहित्य में नारी चेतना के विकास और उसके सामाजिक परिवर्तन से संबंध का अध्ययन किया गया। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में मीरा जैसी स्त्री-आवाज़ें व्यक्तिगत विद्रोह और आध्यात्मिक आत्मस्वीकृति के रूप में सामने आईं, नवजागरण और स्वतंत्रता-आंदोलन के दौर में प्रेमचंद, जैनेंद्र, यशपाल और महादेवी वर्मा ने स्त्री-प्रश्न को सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनाया, स्वातंत्र्योत्तर काल में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती और उषा प्रियंवदा ने स्त्री के आंतरिक जीवन और आत्मनिर्भरता को अभिव्यक्ति दी, तथा 1990 के बाद प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल और गीतांजलि श्री जैसे रचनाकारों के साथ स्त्री-विमर्श एक मुखर और बहुआयामी धारा बन गया। शोध-पत्र का प्रथम प्रश्न इस प्रकार उत्तरित होता है कि हिंदी साहित्य में नारी चेतना सहानुभूति और सुधार की दृष्टि से आरंभ होकर आत्मनिर्णय, आत्मनिर्भरता और अस्मिता की स्वयं अभिव्यक्ति तक पहुँची है। द्वितीय प्रश्न के संबंध में निष्कर्ष यह है कि साहित्य और सामाजिक परिवर्तन के बीच द्विमुखी संबंध रहा है: समाज के परिवर्तनों ने साहित्य को नए विषय दिए और साहित्य ने स्त्री-अधिकारों से जुड़ी चेतना को भाषा और स्वीकृति प्रदान की। परंतु दलित, ग्रामीण और आदिवासी स्त्रियों के अनुभवों का समावेश, बाज़ार के प्रभाव से बचते हुए स्वतंत्रता का अर्थ-निर्धारण और स्त्री-लेखन को साहित्य के मुख्य इतिहास में उचित स्थान दिलाना अभी शेष कार्य है। भविष्य के शोध में लोक-साहित्य, आत्मकथाओं, कविता और भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से इस विषय को और व्यापक बनाया जा सकता है। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि नारी चेतना हिंदी साहित्य में केवल एक विषय नहीं, बल्कि दृष्टि-परिवर्तन का नाम है। जब स्त्री को वस्तु या आदर्श के रूप में देखने की जगह स्वतंत्र मनुष्य के रूप में देखा जाने लगा, तब साहित्य की भाषा, शिल्प और पाठ्य-अपेक्षाएँ भी बदलीं। इसी कारण हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श का अध्ययन साहित्य के सौंदर्यशास्त्र और समाज की नैतिकता, दोनों की पुनर्परीक्षा से जुड़ा हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अनामिका. स्त्रीत्व का मानचित्र. सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999.
2. उषा प्रियंवदा. पचपन खंभे लाल दीवारें. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1961 (प्रथम प्रकाशन).

**National Conference on Emerging Trends in Arts, Humanities and
Multidisciplinary Research (NCETAHMR)**

Organized by- Navyug College of Education, Hisar (16 Aug 2026)

In IJESH ISSN: 2250-3115

3. कृष्णा सोबती. मित्रो मरजानी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966 (प्रथम प्रकाशन).
4. खेतान, प्रभा. उपनिवेश में स्त्री: मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003.
5. खेतान, प्रभा. छिन्नमस्ता. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993 (प्रथम प्रकाशन).
6. गीतांजलि श्री. रेत समाधि. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018.
7. चित्रा मुद्गल. आवाँ. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 (प्रथम प्रकाशन).
8. जैनेंद्र कुमार. त्यागपत्र. पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 1937 (प्रथम प्रकाशन).
9. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. हिंदी साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1940 (प्रथम प्रकाशन).
10. प्रेमचंद. गोदान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1936 (प्रथम प्रकाशन).
11. प्रेमचंद. निर्मला. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1927 (प्रथम प्रकाशन).
12. प्रेमचंद. सेवासदन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1919 (प्रथम प्रकाशन).
13. बैसंत्री, कौशल्या. दोहरा अभिशाप. परमेश्वरी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999.
14. भंडारी, मन्नू. आपका बंटी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1971 (प्रथम प्रकाशन).
15. महादेवी वर्मा. शृंखला की कड़ियाँ. भारती भंडार, इलाहाबाद, 1942.
16. मैत्रेयी पुष्पा. इदन्नमम. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994.
17. यशपाल. दिव्या. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1945 (प्रथम प्रकाशन).
18. यादव, राजेंद्र. आदमी की निगाह में औरत. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001.
19. राजे, सुमन. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2003.
20. शर्मा, रामविलास. प्रेमचंद और उनका युग. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1952 (प्रथम प्रकाशन).
21. शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1929.
22. Beauvoir, Simone de. *The Second Sex*. Translated by H. M. Parshley, Vintage, 1989.
23. Chakravarti, Uma. *Gendering Caste: Through a Feminist Lens*. Stree, Kolkata, 2003.
24. Chatterjee, Partha. *The Nation and Its Fragments: Colonial and Postcolonial Histories*. Princeton University Press, 1993.
25. Forbes, Geraldine. *Women in Modern India*. Cambridge University Press, 1996.